मनुष्य और समाज की बेहतरी का ज्ञान-विज्ञान

शिवप्रसाद जोशी

ज्ञान, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और समाजः आम जबान में कुछ बातें, लेखकः लाल्टू
प्रकाशकः एकलव्य, मूल्यः 200 रुपए

हिंदी कवि और प्रशिक्षण और पेशे से वैज्ञानिक लाल्टू की नई किताबः ज्ञान, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और समाज : आम जबान में कुछ बातें - विज्ञान की बुनियादी संरचना, उसके दार्शनिक पहलुओं और उससे जुड़ी बहसों और प्रौद्योगिकी से जुड़ी सीमाओं और कमजोरियों पर विस्तृत चर्चा करती है और चार्वाक और प्रोमेथियस का झंडा बुलंद रखने वालों को समर्पित की गई है। एक भौतिकवादी, बेबाक सवाल करती, नास्तिकता की दार्शनिक आवाज है तो दूसरा यूनानी मिथकों का नायक जिसने देवताओं के राजा ज्यूस से, आग चुराई और इंसानों को सौंप दी। वो आग ज्ञान और तकनीक की थी।

यह किताब विज्ञान को केवल प्रयोगशालाओं या वैज्ञानिकों तक सीमित विषय न मानकर उसे समाज, राजनीति, संस्कृति और आम आदमी के जीवन से जोड़कर देखने की कोशिश करते हुए विज्ञान को केवल सूचनाओं के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि सोचने की पद्धति के रूप में प्रस्तुत करती है। लाल्टू का मकसद यह दिखाना है कि विज्ञान, प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) और समाज बेशक अलग-अलग संरचनाएं हैं लेकिन वे परस्पर गहराई से जुड़ी हुई हैं। किताब ज्ञान-विज्ञान-टेक्नोलॉजी-मानविकी-एआई-भाषा का एक सिलेसिलेवार और समग्र अध्ययन करते हुए आम लोगों में वैज्ञानिक सोच यानी साइंटिफिक टेंपर को बढ़ावा देने पर जोर देती है और वैज्ञानिक अवधारणाओं और निष्कर्षों को आम जबान में प्रस्तुत करना जरूरी मानती है।

ज्ञान-विज्ञान के नए आयामों की तलाश भूमिका में लाल्टू ने बता दिया है कि किताब का मकसद सूचना देना नहीं बल्कि सोचने का तरीका बदलना है।

किताब दो भागों में बंटी हुई है। 'ज्ञान, विज्ञान, टेक्नोलॉजी और समाज' नाम से पहले भाग के अंतर्गत चार अध्याय हैं और पहले भाग के अंत में चारों अध्यायों का निचोड़, उपसंहार के रूप में दिया गया है। इस तरह यह किताब एक तरह से नए पाठकों और नए संचार माध्यमों पर पठनीयता को सहज बनाने के लिहाज से भी तैयार की गई है। 223 पृष्ठों की किताब के 182 पन्ने पहले भाग में ही है, जिनमें लाल्टू ने चारों अध्यायों के तहत विज्ञान और धर्म, विज्ञान और दर्शन, विज्ञान और मार्क्सवाद, मिथक और विज्ञान, उत्तरआधुनिकता, स्त्री विमर्श, ईश्वरीय मान्यताएं और वैज्ञानिक प्रस्थापनाएं जैसे बहुत सारे अंतर्निहित प्रश्नों को समेटा है। और उनके कुछ जवाब देने की कोशिश की है।

किताब के पहले अध्याय, 'ज्ञान की जमीन और जमीनी ज्ञान' में लाल्टू बताते हैं कि ज्ञान सिर्फ किताबों से नहीं बल्कि अनुभव, परंपरा और जमीनी यथार्थ से भी बनता है। लेकिन चाहे लोक-ज्ञान हो या वैज्ञानिक ज्ञान, उन्हें सवालों और सबूतों से परखा ही जाता है। अध्याय में बताया गया है कि ज्ञान क्या है और विज्ञान क्या, टेक्नोलॉजी से क्या आशय हैं और विज्ञान और समाज का आपसी रिश्ता क्या है। क्यों विज्ञान समाज से अलग नहीं है और सामाजिक जरूरतें कैसे विज्ञान के विकास को प्रभावित करती हैं। लेखक के मुताबिक विज्ञान का उद्देश्य तथ्यों का एकत्रीकरण नहीं बल्कि प्रकृति को समझना उसकी व्याख्या करने का है। वह एक पद्धति है जो पूछने, प्रमाण हासिल करने और निष्कर्षों की जांच पर निर्भर रहती है। लाल्टू बताते हैं कि तर्क और प्रमाण आधारित सोच लोकतांत्रिक समाज के लिए महत्वपूर्ण है। वो अंधविश्वास, मिथक और खोखले दावों पर सवाल उठाते रहने की जिम्मेदारी की याद भी दिलाते चलते हैं। दूसरा अध्याय है- 'विज्ञान कुदरत पर इंसान की पकड़'- जिसमें बताया गया है कि विज्ञान प्रकृति को समझने की एक प्रणाली है और सच को जानने की प्रक्रिया है। उसका फोकस सही जवाब से ज्यादा बेहतर सवाल पर होता है और वो स्थिर नहीं निरंतर परिवर्तनशील है क्योंकि विज्ञान एक विधि है विषय नहीं।

तीसरा अध्याय 'विज्ञान और टेक्नोलॉजी- दो हमसाए और समाज' में लाल्टू बताते हैं कि अक्सर विज्ञान और प्रौद्योगिकी को एक ही बात मान लिया जाता है। विज्ञान समझ है और प्रौद्योगिकी, एप्लीकेशन है यानी विज्ञान को लागू करने का अभ्यास। टेक्नोलॉजी के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए वे उसे अन्य परिघटनाओं के साथ भी जोड़कर अपने आख्यान को विस्तार देते हैं। जैसे टेक्नोलॉजी और तर्कशीलता का सह-संबंध है और जेंडर और टेक्नोलॉजी को लेकर भी एक बहस है। इसमें अपने ढंग का पहला विश्लेषण हमें देखने को मिलता है जिसके तहत लेखक बताते हैं कि इन्सान टेक्नोलॉजी के साथा कैसे जुड़ता है इसमें जेंजर की विचारधारा भी काम करती है।

आमतौर पर टेक्नोलॉजी के बारे में यह समझ है कि यह औरतों का काम नहीं है। इस सोच पर सवाल किया जाना चाहिए। अगर हम पुरुषों और स्त्रियों के काम की तालिका बनाए तो देखेंगे कि जेंडर पहचान और विचारधारा टेक्नोलॉजी का स्वरूप तय करती हैं... कुछ तकनीकें ऐसी हैं जिसमें मुख्यतः पुरुष काम कर रहे हैं पर स्त्रियों ने भी टेक्नोलॉजी को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है। इसकी सबसे अच्छी मिसाल डिजिटल कम्प्यूटर का इतिहास है। आम तौर पर यह सोचा जाता है कि डिजिटल

कम्प्यूटर ज्यादा तर्कशील पुरुष इंजीनियरों, गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और टेक्नीशियनों का खित्ता है। सच यह है कि जब कम्प्यूटरों की पहली पीढ़ी आई तो बहुत सारी प्रोग्रामर स्त्रियां थीं।

एआई और उसके औजारों के साए में हमारा समय लाल्टू याद दिलाते हैं कि सिर्फ तकनीकी पहलुओं के आधार पर टेक्नोलॉजी पर राय नहीं बनानी चाहिए।

सामाजिक नतीजों के बारे में सोचना जरूरी है। लाल्टू का तर्क है कि टेक्नोलॉजी पर हमारी राय अक्सर समझ से ज्यादा आस्था पर टिकी होती है, हम अपने इर्द-गिर्द की मशीनों में से किसी एक को भी ठीक से नहीं समझते।

चौथे अध्याय में लाल्टू विज्ञान और मानविकी की बहस में अपनी बात जोड़ते हुए बताते हुए कहते हैं कि समाज को समझने के लिए मानविकी का महत्व है और विज्ञान समाज को समझे बिना अधूरा है। इस पर आगे और चर्चा करने से पहले बता दें कि 'एआई और अन्य सवाल' किताब का दूसरा भाग है और उसके तहत भी चार अध्याय हैं। ये चार अध्याय मूल रूप से लाल्टू के विभिन्न विज्ञान जर्नलों, पत्रिकाओं और अखबारों में प्रकाशित निबंध हैं जिनमें एआई और उसके तानेबाने को समझने में मदद मिलती है।

इस भाग का पहला और किताब का पांचवा अध्याय कृत्रिम बुद्धि यानी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर केंद्रित है।

लाल्टू ए-आई की कहानी कारेल चापेक के 1920 के नाटक 'आर.यू.आर' से शुरू करते हैं, वही नाटक जहां से 'रोबोट' शब्द दुनिया में आया। अध्याय में बताया गया है कि एआई क्या है और वो कैसे काम करता है, कि वो सोचता नहीं पैटर्न पहचान कर जवाब तैयार करता है। उनका कहना है कि ए-आई का बुनियादी सवाल यह नहीं है कि मशीन इन्सानी इल्म कैसे पाए, बल्कि यह है कि इन्सान को मशीन की तरह कैसे समझा जाए। छठा अध्याय भी एआई की बहस को आगे ले जाता हुआ उसमें इंसानों जैसी चेतना से जुड़े मुद्दों पर विचार करता है। चेतना को एक गहन दार्शनिक प्रश्न बताते हुए लाल्टू कहते हैं कि ''कम्प्यूटर वैज्ञानिकों, तंत्रिका-विज्ञानियों (न्यूरो- साइंटिस्टों) और दार्शनिकों के एक समूह ने चेतना की विशेषताओं की एक लंबी जांच सूची बनाई है जिसमें शोधकर्ताओं ने मानव चेतना के 14 मानदंड रखे हैं और वे उन्हें मौजूदा एआई संरचना पर लागू करते हैं, जिसमे चौट-जीपीटी को चलाने वाले मॉडल भी शामिल हैं। लेकिन ये कह पाना अब भी नामुमकिन है कि कोई मशीन वाकई चेतन है या नहीं।''

इसी कड़ी में सातवां अध्याय एआई से ही निकले चौट-जीपीटी के औजार की छानबीन करता है। और लेखक पूछते हैं कि क्या यह इंसानी अजूबा है या धोखेबाज औजार। एआई की दौड़ में उसे मील का पत्थर बताते हुए लाल्टू न्यूरॉन तंत्र से प्रेरित इस जटिल सॉफ्टवेयर की बारीकियों को आमफहम भाषा में पाठकों को समझाते हैं कि यह मशीन लर्निंग उपयोगी भी है और नुकसानदायक भी। वे उसके सही, नैतिक, सुचिंतित इस्तेमाल पर जोर दिए जाने की वकालत करते हैं। अकादमिक और शोध जगत में चौट-जीपीटी और उस जैसे अन्य औजार क्या 'धमाल' मचा रहे हैं, ये किसी से छिपा नहीं है। डिजिटल पत्रकारिता के दौर में उसकी भूमिका और भी बढ़ गई है और रोजगार और छंटनी जैसे गंभीर नाजुक मुद्दे एक बार फिर चर्चा और चिंता के दायरे में आ गए हैं।

किताब का आखिरी और आठवां अध्याय, लेखक का जनसत्ता में प्रकाशित एक लेख है- 'हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली बेहतर या षड्यंत्र।' इस लेख के जरिए हिंदी में विज्ञान संबंधी सूचनाओं और नवोन्मेष को लेकर भाषा व्यवहार के बारे में चर्चा की गई है।

ज्ञान-विज्ञान की भाषा और भाषा का ज्ञान-विज्ञान लाल्टू का कहना है कि 'विपथन', 'उत्क्रमणीय', 'अनुदैर्घ्य' जैसे संस्कृतनिष्ठ गढ़े गए शब्द खुद हिंदी अध्यापकों की पहुंच से बाहर हैं, जबकि उनके अंग्रेजी पर्याय किसी भी हाईस्कूल छात्र की समझ में आ जाते हैं और 'कीमिया' और 'कीमियागर' जैसे प्रचलित शब्द सिर्फ इसलिए खारिज कर दिए गए कि वे उर्दू में भी चलते हैं।

लाल्टू इसे हिंदी-भाषियों के खलिाफ एक 'षड़यंत्र' कहने से नहीं हिचकते, और इसमें जाति की भूमिका को भी रेखांकित करते हैं। उनके मुताबिक यह वही चिंता है जिसे सत्येंद्रनाथ बोस जैसे वैज्ञानिक ने भारतीय भाषाओं में विज्ञान-लेखन पर जोर देकर बहुत पहले सामने रखा था। लाल्टू जिद की तरह मानते हैं कि वैज्ञानिक शब्दावली को हिंदी में फैले सवर्णवाद और ब्राह्मणवाद से मुक्ति दिलाना अनिवार्य है वरना विज्ञान इस भाषा में सिसकता रहेगा। और उसे सीखने पढ़ने वाले विद्यार्थी, शिक्षार्थी, शोधकर्ता भी हैरान परेशान होते रहेंगे। लाल्टू यह भी बताते हैं कि विज्ञान क्योंकि अंधविश्वासों, मिथकों और मान्यताओं का एक नया पाठ पेश करता है, बाजदफा उन्हें चुनौती देता है और पुराने रूढ़िवादी मूल्यों से टकराता भी है तो ऐसे में उसका दर्शन, उन शक्तियों के लिए चुनौती भी बनता है जो किसी न किसी रूप से सांस्कृतिक वर्चस्व के ऊपरी पायदानों पर हैं।

''चूंकि हिंदी क्षेत्र में गरीबी, भुखमरी और बुनियादी इंसानी हुकूक जैसे मुद्दे अभी भी ज्वलंत हैं, विज्ञान और भाषा के इन सवालों पर जमीनी कार्यकर्ताओं का ध्यान जाता भी है तो वह महत्वपूर्ण नहीं बन पाए हैं। हिंदी में विज्ञान कथाओं और विज्ञान लेखन के अभाव (कुछेक अपवादों को छोड़कर) के समाजशास्त्रीय कारणों को ढूंढा जाए तो भाषा के सवालों से हम बच नहीं पाएंगे।''

लाल्टू ने हल्के हाथों से इस किताब को लिखा है। सरल, सहज, संवादात्मक और तकनीकी शब्दों की क्लीषे विहीन व्याख्या पेश की है। और यह बात भी ध्यान खींचती है कि अंततः लाल्टू विज्ञान को सामाजिक संदर्भों से जोड़ते हुए अपनी प्रस्थापनाएं देते हैं। सामान्य या लोक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान, विज्ञान की प्रकृति, तकनीक का विकास, विज्ञान और लोकतंत्र, विज्ञान और सामाजिक असमानता, वैज्ञानिक नजरिया और शिक्षा के बारे में बताते हुए वे यही कहते हैं कि विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं का विषय नहीं, बल्कि समाज को समझने और बेहतर बनाने का एक साधन भी है। तकनीकी या प्रौद्योगिकी अपने-आप में न तो पूरी तरह अच्छी होती है न बुरी, उसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि समाज उसका उपयोग किस प्रकार करता है। वैज्ञानिक वैचारिकी वाली यह किताब पाठकों के एक हिस्से को शायद बोझिल लगे लेकिन किताब का मकसद ही है आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करना, विज्ञान को आम लोगों की समझ से जोड़ना, उसे पठनीय और सहज बनाना और पेचीदा

तथ्यों को स्पष्ट और सहज कर पाना। और ऐसा करते हुए लाल्टू ने मूल पाठ को सरलीकृत होने से बचाए रखा है।

ज्ञान सवालों से बनता है, और विज्ञान सामान्य समझ को जांचकर उसे व्यवस्थित बनाता है, लेकिन दोनों ही पूरी तरह पूर्ण या अंतिम नहीं हैं। ज्ञान क्या अनिवार्य तौर पर निश्चित होता है, इस गूढ़ सवाल के अर्थ खोलते हुए लाल्टू प्रसिद्ध दार्शनिक, गणितज्ञ और साहित्यकार बट्रेंड रसेल को याद करते हैं, जिन्हें 1950 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी मिला था, उन्होंने कहा है- ''दरअसल हम लोग ज्ञान नहीं, निश्चितता चाहते हैं।'' रसेल के कई साल बाद 2020 में साहित्य का नोबेल जीतने वाली अमेरिकी कवि लुईस ग्लिक ने एक आख्यान में कहा- ''मुझे निश्चितता में धकेला जाना नापसंद है।'' ज्ञान के दार्शनिक पहलुओं की छानबीन करते हुए लाल्टू बड़े ही दिलचस्प अंदाज में, मशहूर कार्टून केल्विन एंड हॉब्स में पिता पुत्र के संवाद से संदेश उठाते हुए अनुभूति के भ्रम तक जाते हैं। इस संदर्भ में भी वे एक चर्चित कार्टून/स्केच पेश करते हैं। दो व्यक्तियों के बीच लकड़ी के ब्लॉक इस तरह रखे हैं कि बांयी तरफ वाले व्यक्ति उनकी संख्या चार बताता है और दांयी ओर खड़े व्यक्ति को तीन ब्लॉक दिखते हैं। कौन सही है? क्या हम मानेंगे कि उनमें से एक सही है, या ये मान लेंगे कि दोनों सही हैं?

ज्ञान की निश्चितता से जुड़े विरोधाभासों और द्वंद्वों के समांतर ही किताब में एक और दिलचस्प प्रश्न भाषा या शब्द या कथन की अस्पष्टता और अनेकार्थकता के जरिए भी आया है। अस्पष्टता क्या समस्या होती है या वो एक खासियत होती है, इस संदर्भ में लाल्टू 'सपना' शब्द के उदाहरण से दिखाते हैं कि एक ही शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं, जैसे सपना शब्द का आशय, नींद में आने वाले दृश्य, कल्पना, उम्मीद, लक्ष्य, या भावनात्मक स्थिति से हो सकता है। लाल्टू चुनिंदा हिंदी कवियों की कविताओं को याद करते हुए स्पष्ट करते हैं कि हर कवि के यहां सपना अलग-अलग आशयों में प्रयुक्त हुआ है। ''गोरख पांडे की 'सपन मनभावन' सखियों की बातचीत, ऐसा सपना जिसमे इंकलाब है, पाश की 'सबसे खतरनाक' सपनों की मौत को सबसे खतरनाक कहना, और कुमार विकल की 'स्वप्न घर' - ऐसे घर का तसव्वुर जहां कोई हिंसा न हो, इन कविताओं में इस शब्द का उपयोग देखें। लैग्स्टन ह्यूज की प्रसिद्ध कविता 'हार्लेम' में हर पंक्ति में सपना अलग अर्थ लिए आता है दौड़ता, किसमिस सा सूखता सड़े मांस की बदबू निकालत, भीग कर बोझिल हो चुका और आखिर में विस्फोट बन फूटता सपना। ऐसा कहा जा सकता है कि अस्पष्ट और अनेकार्थी होने की वजह से ही हम इन कविताओं में से उन सभी सामाजिक राजनैतिक-ऐतिहासिक बातों को जान पाते हैं जिनके लिए ये कविताएं जानी जाती हैं।''

कहने का तात्पर्य यह है कि हर शब्द का सिर्फ एक ही मतलब नहीं हो सकता वरना कविता और साहित्य बहुत सीमित हो जाएगा, अस्पष्ट रहना भी जरूरी है क्योंकि उसकी वजह से ही मौलिक भावनाओं का पता चलता है, वे उद्घाटित होती हैं, बहुअर्थी ध्वन्यात्मकता बनती और समाज और राजनीति के कुछ पर्दे उठते हैं। इस तरह अस्पष्टता कमजोरी नहीं शक्ति है। मानविकी में ऐसी अस्पष्टताएं जरूरी हैं। लेकिन विज्ञान स्पष्टता चाहता है, वहां अर्थबाहुल्य की गुंजायश नहीं है, वहां परिणाम-बाहुल्य बेशक दृष्टव्य है।

विज्ञान के संशय और अनुतरित प्रश्न लाल्टू की किताब अपनी मूल प्रस्थापना के एक अहम बिंदु के जरिए हमें आगाह भी कराती है और जिसका थोड़ा सा जिक्र इस लेख में पहले भी किया गया है कि ज्ञान कभी भी केवल सत्य नहीं होता, वो हमेशा उस भाषा और संस्थागत सत्ता का उत्पाद होता है जो यह तय करती है कि कौन बोल सकता है और कौन समझने के लिए बाध्य है। भाषा और ज्ञान की यह हेजेमनी, हिंदी में भी उसी तरह सक्रिय है जैसे कि अंग्रेजी में। फिर बात विज्ञान को हिंदी पट्टी में आमफहम बनाने के लिए उसे हिंदी में ही उतार देने से पूरी नहीं होती, उसके नए औजार देखने होंगे, नए तरीके आजमाने होंगे, एक ऐसी भाषा बनानी होगी जो दुराग्रहों से मुक्त हो और तमाम वर्चस्वों को मिटाती चले।

लाल्टू अपनी किताब में कुछ बुनियादी दार्शनिक सवाल लगातार उठाते चलते हैं जैसे विज्ञान और धर्म पर, मार्क्सवाद के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य पर, विज्ञान को सीधे-सीधे वरदान या अभिशाप कह देने या न कह पाने की मुश्किल या दुविधा पर। लेखक के मुताबिक हम अक्सर मान लेते हैं कि जो दिखता है वही सच है लेकिन यह बात अधूरी है क्योंकि कई चीजें तुरंत नहीं दिखतीं और आगे चलकर नई जानकारी पुराने सच को बदल सकती है यानी ज्ञान स्थिर नहीं परिवर्तनशील होता है। इस तरह विज्ञान उसे ही सच मानता है जिसे बार-बार परखा, जांचा, तौला जा सके। लेकिन क्या हर चीज जांची-परखी तौली जा सकती है? क्या हर चीज प्रयोगशाल या गणितीय सूत्रों या वैज्ञानिक फार्मूलों में निबद्ध हो सकती है? शायद नहीं, क्योंकि कुछ विषय ऐसे हैं जो विज्ञान के इतर अपनी प्रक्रिया बुनते रहते हैं जैसे कला, कविता और संगीत, आस्था, चेतना, भविष्य।

कला विधाएं वैज्ञानिक संरचना के बने-बनाए स्थापित ढांचों और उसूलों के बाहर जाकर भी इंसान को चौंकाती रहती हैं। बेशक मस्तिष्क और चेतना और शारीरिक और मानसिक सक्रियता और बौद्धिक कवायद से जुड़े प्रश्न भी अंतत विज्ञान के ही प्रश्न हैं, लेकिन कुछ अवर्णनीय क्षण होते हैं जिनमें कोई सीधा स्पष्ट जवाब हमें नहीं मिलता, अधिकांश चीजें विज्ञान और प्रौद्योगिकी से अनुकूलित या संचालित या प्रभावित हैं लेकिन अधिकांश ही, सब नहीं। इस तरह एक विराट विज्ञान-ब्रह्मांड में कुछ अनदेखे अनसुलझे कोने तैरते रहते हैं, जहां स्थापित दर्शन और सिद्धांत और मान्यताएं दखल नहीं देतीं। अपने अपने विवेक के आधार पर लोग तय करेंगे कि वहां उनका ईश्वर निवास करता है या उनकी आस्था या उनका विज्ञान या वहां कविता का निवास है।

एक समावेशी निरंतरता का विज्ञान लेखन लोकप्रिय शैली में लिखी गई विज्ञान पुस्तकों की बेशक कमी है लेकिन ऐसी पुस्तकें भी आई हैं जिन्होंने एक बड़े पाठक वर्ग को वैज्ञानिक चेतना से समृद्ध किया है। इस कड़ी में एक नाम प्रसिद्ध विज्ञान लेखक गुणाकर मुळे की लोकप्रिय किताब 'तारों भरा आकाश' का है। 'चाय की केतली में पहेली,' 'दुनिया जब नई नई थी' जैसी अंग्रेजी से अनूदित किताबों के अलावा रादुगा प्रकाशन से 20वीं सदी के 1980 के दशक में आई, रूसी से हिंदी में अनूदित दो भागों वाली किताब 'मनोरंजक भौतिकी' हो या 'स्रोत,' 'विज्ञान प्रगति' और 'साइकिल' जैसी पत्रिकाएं